सेवट्टेण य गम्मइ, आदीदो चदुसु कप्पजुगलोत्ति ।
तत्तो दुजुगलजुगले, खीलियणारायणद्धोत्ति ॥ 29 ॥

- अर्थ—सृपाटिकासंहनन वाले जीव यदि देव गति में उत्पन्न हों तो पहले सौधर्मयुगल से चौथे लांतवयुगल तक चार युगलों में उत्पन्न होते हैं ।
- फिर चौथे युगल के बाद दो-दो युगलों में क्रम से कीलित संहनन वाले और अर्द्धनाराच संहनन वाले जीव जन्म धारण करते हैं । अर्थात् पाँचवें तथा छट्ठे स्वर्गयुगल में कीलितसंहनन वाले और सातवें तथा आठवें स्वर्गयुगल में अर्धनाराच संहनन वाले जन्म लेते हैं ॥ 29 ॥

णवगेविज्जाणुद्दिस-णुत्तरवासीसु जांति ते णियमा ।
तिदुगेगे संघडणे, णारायणमादिगे कमसो ॥ 30 ॥

- अर्थ—नाराच आदि तीन संहनन से अर्थात् नाराच, वज्रनाराच, वज्रऋषभनाराच इन तीन संहननों के उदय से जीव नवग्रैवेयक पर्यंत,
- वज्रनाराच और वज्रऋषभनाराच संहनन वाले नव अनुदिश विमान पर्यंत तथा
- वज्रऋषभनाराच संहनन वाले पाँच अनुत्तर विमानों तक में उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार संहनन के अनुसार देव गति में जन्म लेने की मर्यादा कही ॥ 30 ॥

सण्णी छस्संहडणो, वज्जदि मेघं तदो परं चावि ।
सेवट्टादीरहिदो, पणपणचदुरेगसंहडणो ॥ 31 ॥

- अर्थ—छह संहनन वाले संज्ञी जीव यदि नरक में जन्म लेवें तो मेघानामक तीसरे नरकपर्यन्त जाते हैं ।
- सृपाटिकासंहननरहित पाँच संहनन वाले अरिष्टा नामक पाँचवे नरक की पृथ्वी तक उपजते हैं ।
- चार संहनन वाले अर्थात् अर्द्धनाराचपर्यंत वाले मघवी नामक छठी पृथिवी तक और
- वज्रऋषभनाराचसंहनन वाले सातवीं माघवी नामक पृथिवी तक उत्पन्न होते हैं ॥ 31 ॥

| संहनन | स्वर्ग | नरक |
| --- | --- | --- |
| सृपाटिका संहनन | 8वें स्वर्ग तक | तीसरे नरक तक |
| कीलित संहनन | 12वें स्वर्ग तक | पांचवें नरक तक |
| अर्धनाराच संहनन | 16वें स्वर्ग तक | छठे नरक तक |
| नाराच संहनन | नव ग्रैवेयक तक | छठे नरक तक |
| वज्रनाराच संहनन | नव अनुदिश तक | छठे नरक तक |
| वज्रऋषभ नाराच संहनन | 5 अनुत्तर तक | सातवें नरक तक |

अंतिमतिगसंघडणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाणं ।
आदिमतिगसंहडणं, णत्थि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ 32 ॥

- अर्थ—कर्मभूमि की स्त्रियों के अन्त के तीन अर्द्धनाराचादि संहननों का ही उदय होता है ।
- आदि के तीन वज्रऋषभनाराचादि संहनन कर्मभूमि की स्त्रियों के नहीं होते – ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ॥ 32 ॥

# कर्मभूमि की स्त्रियों के संहनन

| | |
|---|---|
| असंप्राप्तासृपाटिका | वज्रऋषभनाराच |
| कीलित | वज्रनाराच |
| अर्ध नाराच | नाराच |
| ही होते हैं । | नहीं होते हैं । |

* भोगभूमि की स्त्रियों के कौन-सा संहनन होता है ?

मूलुण्हपहा अग्गी, आदावो होदि उण्हसहियपहा ।
आइच्चे तेरिच्छे, उण्हूणपहा हु उज्जोओ ॥ 33 ॥

- अर्थ—अग्नि के मूल और प्रभा दोनों ही उष्ण रहते हैं । इस कारण उसके स्पर्शनामकर्म के भेद उष्णस्पर्श नामकर्म का उदय जानना ।
- जिसकी केवल प्रभा (किरणों का फैलाव) ही उष्ण हो उसको आतप कहते हैं । इस आतपनामकर्म का उदय सूर्य के बिम्ब (विमान) में उत्पन्न हुए बादरपर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों के होता है ।
- जिसकी प्रभा भी उष्णता रहित हो उसको नियम से उद्योत जानना ॥ 33 ॥

# उष्ण, आतप, उद्योत कर्म में अंतर

| पद | मूल | प्रभा | उदाहरण |
|---|---|---|---|
| उष्ण कर्म | उष्ण | उष्ण | अग्निकायिक |
| आतप कर्म | अनुष्ण | उष्ण | सूर्य विमान के पृथ्वीकायिक जीव |
| उद्योत कर्म | अनुष्ण | अनुष्ण | चन्द्रबिम्ब के पृथ्वीकायिक जीव |

देहे अविणाभावी, बंधणसंघाद इदि अबंधुदया ।
वण्णचउक्केऽभिण्णे, गहिदे चत्तारि बंधुदये ॥ 34 ॥

- अर्थ—शरीर नामकर्म के साथ अपना-अपना बंधन और अपना-अपना संघात; ये दोनों अविनाभावी हैं । अर्थात् ये दोनों शरीर के बिना नहीं हो सकते । इस कारण पाँच बंधन और पाँच संघात ये 10 प्रकृतियाँ बन्ध और उदय अवस्था में अभेद विवक्षा से जुदी नहीं गिनी जातीं, शरीर नामक प्रकृति में ही शामिल हो जाती हैं ।
- वर्ण, गंध, रस, स्पर्श – इन चार में ही इनके बीस भेद शामिल हो जाते हैं । इस कारण अभेद की अपेक्षा से इनके भी बन्ध और उदय अवस्था में चार ही भेद माने हैं ॥ 34 ॥

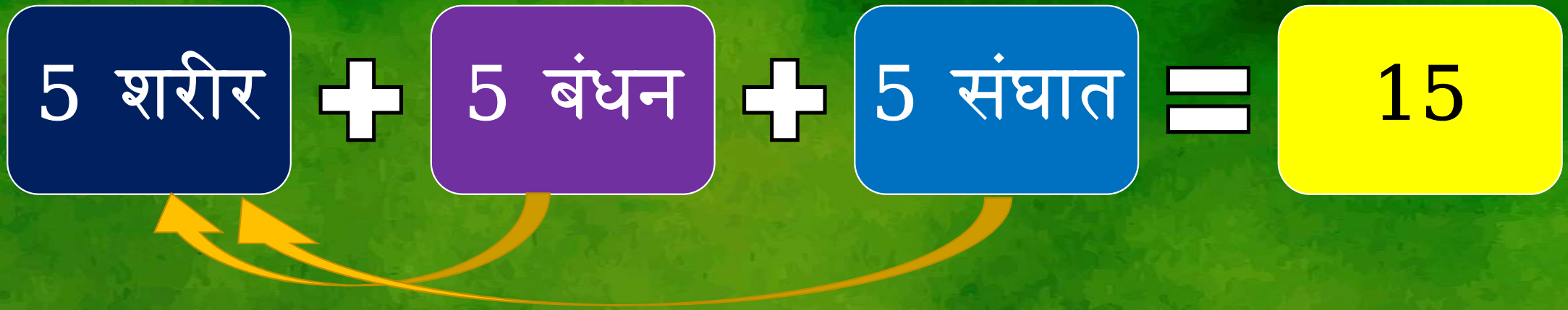


अभेद अपेक्षा में (15 – 5 शरीर =) 10 प्रकृतियाँ कम हो जाती हैं

क्योंकि बंधन और संघात कर्म शरीर नामकर्म के अविनाभावी हैं ।

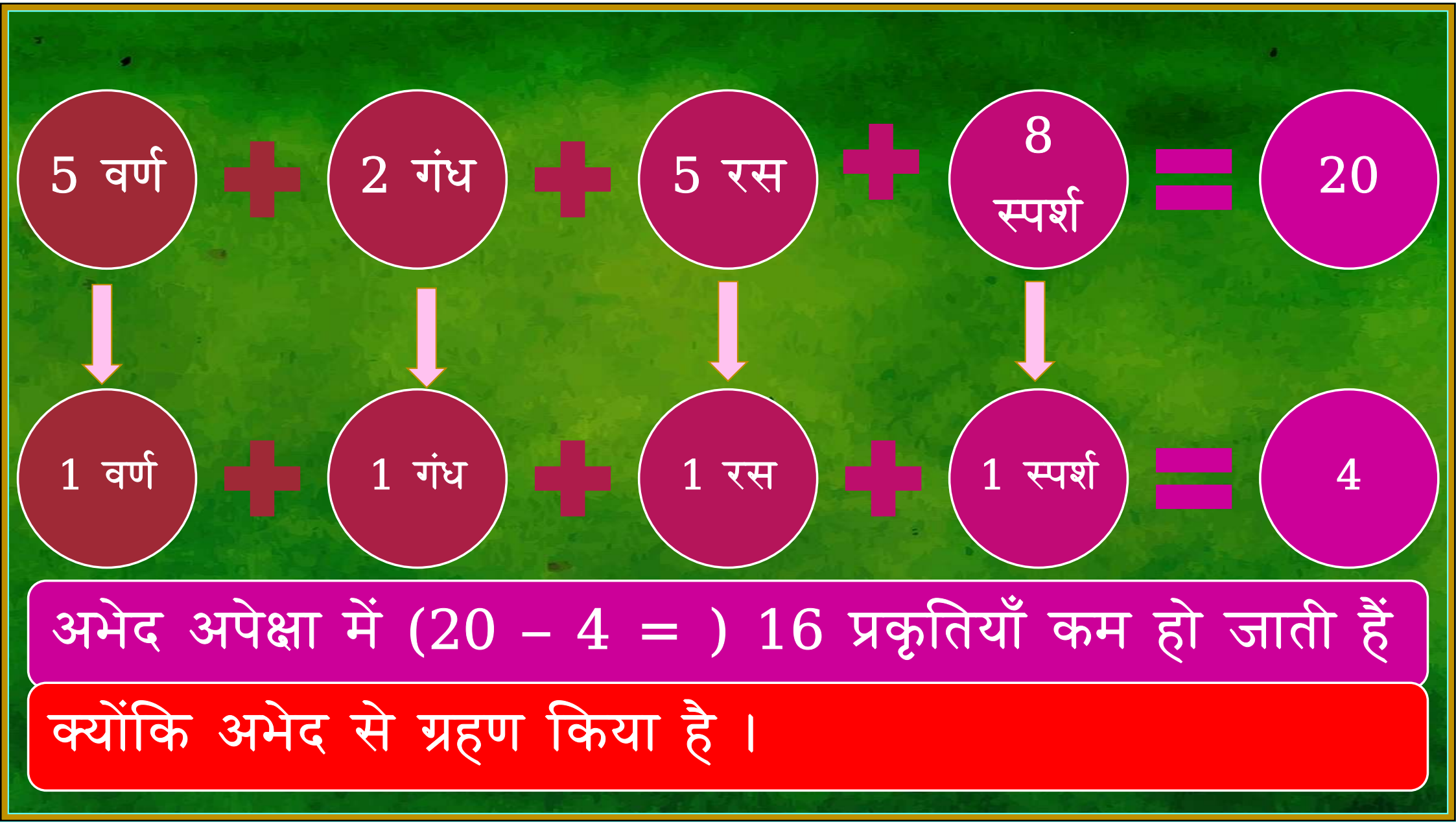
5 वर्ण
2 गंध
5 रस
8 स्पर्श
20
1 वर्ण
1 गंध
1 रस
1 स्पर्श
4
अभेद अपेक्षा में (20 – 4 = ) 16 प्रकृतियाँ कम हो जाती हैं
क्योंकि अभेद से ग्रहण किया है ।

# विशेष

ऐसी अभेद विवक्षा बन्ध और उदयरूप प्रकृतियों में ही की है, सत्त्व में नहीं ।

मिश्र मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय बन्ध-योग्य नहीं हैं, अतः मोहनीय में बंध-योग्य में से दो प्रकृतियाँ घटायी हैं ।

पंच णव दोण्णि छव्वीसमवि य चउरो कमेण सत्तट्ठी ।
दोण्णि य पंच य भणिया, एदाओ बंधपयडीओ ॥ 35 ॥

- अर्थ—ज्ञानावरण की 5, दर्शनावरण की 9, वेदनीय की 2, मोहनीय की 26, आयुकर्म की 4, नामकर्म की 67, गोत्रकर्म की 2, अंतरायकर्म की 5 – ये सब बंध होने योग्य प्रकृतियाँ हैं क्योंकि मोहनीय में सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति बन्ध में नहीं है यह पहले कह चुके हैं ।
- नामकर्म में पहले गाथा में 10+16=26 प्रकृतियाँ अभेद विवक्षा से बंध अवस्था में नहीं है ऐसा कह आये हैं । सो 93 में से 26 कम करने पर (93–26=67) 67 बाकी रह जाती हैं ॥ 35 ॥

पंच णव दोण्णि अट्ठा-वीसं चउरो कमेण सत्तट्ठी ।
दोण्णि य पंच य भणिया, एदाओ उदयपयडीओ ॥36॥

- अर्थ – पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, सड़सठ, दो और पाँच – ये सब उदय प्रकृतियाँ हैं ।
- मोहनीय की बंध-योग्य छब्बीस प्रकृतियों में सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति – ये दो भी उदय अवस्था में शामिल करने से अट्ठाईस प्रकृतियाँ हो जाती हैं ॥ 36 ॥

पंच णव दोण्णि अट्ठा-वीसं चउरो कमेण तेणउदी ।
दोण्णि य पंच य भणिया, एदाओ सत्तपयडीओ ॥ 38 ॥

- अर्थ — पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, तिरानवे, दो और पाँच – इस तरह सब 148 सत्तारूप प्रकृतियाँ कही हैं ॥ 38 ॥

# बंध, उदय, सत्त्व योग्य प्रकृतियाँ

| कर्म | बंध योग्य | उदय योग्य | सत्त्व योग्य |
|---|---|---|---|
| ज्ञानावरण | 5 | 5 | 5 |
| दर्शनावरण | 9 | 9 | 9 |
| वेदनीय | 2 | 2 | 2 |
| मोहनीय | 26 | 28 | 28 |
| आयु | 4 | 4 | 4 |
| नाम | 67 (93–26) | 67 | 93 |
| गोत्र | 2 | 2 | 2 |
| अन्तराय | 5 | 5 | 5 |
| कुल | 120 | 122 | 148 |

भेदे छादालसयं, इदरे बंधे हवंति वीससयं ।
भेदे सव्वे उदये, बावीससयं अभेदम्हि ॥ 37 ॥

- अर्थ—बन्ध अवस्था में, भेदविवक्षा से 146 प्रकृतियाँ हैं; क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृति ये दोनों बंध-योग्य नहीं हैं और अभेद की विवक्षा से 120 प्रकृतियाँ कहीं हैं क्योंकि 26 प्रकृतियाँ दूसरे भेदों में शामिल कर दी गई हैं ।
- उदय अवस्था में, भेदविवक्षा से सब 148 प्रकृतियाँ हैं क्योंकि मोहनीय कर्म की पूर्वोक्त दो प्रकृतियाँ भी यहाँ शामिल हो जाती हैं । तथा अभेद विवक्षा से 122 प्रकृतियाँ कही हैं क्योंकि 26 भेद दूसरे भेदों में गर्भित हो जाते हैं ॥ 37 ॥

# बंध, उदय योग्य प्रकृतियाँ

| | भेद विवक्षा | अभेद विवक्षा |
|---|---|---|
| बंध योग्य | 146 | 120 (146–26) |
| उदय योग्य | 148 | 122 (148–26) |

केवलणाणावरणं, दंसणछक्कं कसायबारसयं ।
मिच्छं च सव्वघादी, सम्मामिच्छं अबंधम्मि ॥ 39 ॥

- अर्थ—केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण और पाँच निद्रा इस प्रकार दर्शनावरण के छः भेद, तथा अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ – ये बारह कषाय और मिथ्यात्व मोहनीय – सब मिलकर 20 प्रकृतियाँ सर्वघाती हैं । तथा
- सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति भी बन्धरहित अवस्था में अर्थात् उदय और सत्ता अवस्था में सर्वघाती है । परन्तु यह सर्वघाती जुदी ही जाति की है ॥ 39 ॥

णाणावरणचउक्कं, तिदंसणं सम्मगं च संजलणं ।
णव णोकसाय विग्घं, छव्वीसा देसघादीओ ॥ 40 ॥

- अर्थ—ज्ञानावरण के चार भेद (केवलज्ञानावरण को छोड़कर), दर्शनावरण के तीन भेद (पूर्व कथित छः भेदों के सिवाय), सम्यक्त्व प्रकृति, संज्वलन क्रोधादि चार, हास्यादि नोकषाय नव और अंतराय के पाँच भेद – इस तरह छब्बीस देशघाती कर्म हैं क्योंकि इनके उदय होने पर भी जीव का गुण प्रगट रहता है ॥ 40 ॥

# कर्म के भेद (अनुभाग की अपेक्षा)

## सर्वघाती

- अपने से प्रतिबद्ध जीव के गुण को पूर्णरूप से घातने का जिसका स्वभाव है वह सर्वघाती कर्म है ।

## देशघाती

- अपने से प्रतिबद्ध जीव के गुण को एकदेशरूप से घातने का जिसका स्वभाव है वह देशघाती कर्म है ।

# विशेष

जीव के गुणों का घात घातिया कर्म करते हैं इसलिए सर्वघाती और देशघाती ये भेद घातिया कर्म में ही होते हैं ।

जिसका उदय होने पर जीव का गुण सर्वथा प्रकट ना हो, वह सर्वघाती प्रकृति है ।

जिसका उदय होने पर भी जीव का गुण आंशिक प्रकट हो, वह देशघाती प्रकृति है ।

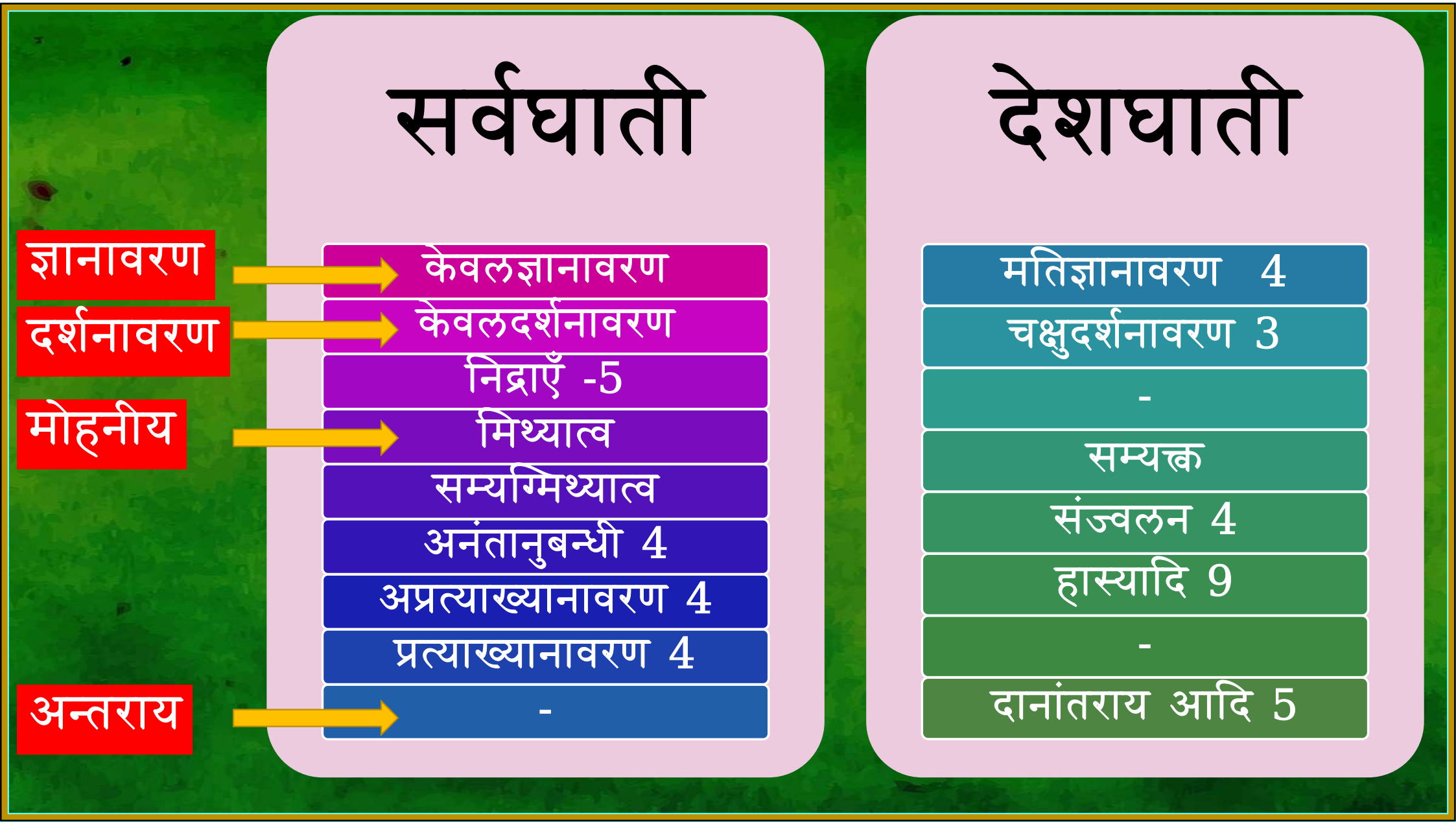
सर्वघाती
देशघाती
ज्ञानावरण
दर्शनावरण
मोहनीय
अन्तराय
केवलज्ञानावरण
केवलदर्शनावरण
निद्राएँ -5
मिथ्यात्व
सम्यग्मिथ्यात्व
अनंतानुबन्धी 4
अप्रत्याख्यानावरण 4
प्रत्याख्यानावरण 4
-
मतिज्ञानावरण 4
चक्षुदर्शनावरण 3
-
सम्यक्त्व
संज्वलन 4
हास्यादि 9
-
दानांतराय आदि 5

सादं तिण्णेवाऊ, उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी ।
देहा बंधणसंघा-दंगोवंगाइं वण्णचओ ॥ 41 ॥
समचउरवज्जरिसह, उवघादूणगुरुछक्क सग्गमणं ।
तसबारसट्ठसट्ठी, बादालमभेददो सत्था ॥ 42 ॥ जुम्मं ।

- अर्थ—सातावेदनीय 1,
- तिर्यंच, मनुष्य, देवायु 3,
- उच्चगोत्र 1,
- मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, पंचइन्द्रिय जाति, शरीर 5, बंधन 5, संघात 5, अंगोपांग 3, शुभ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श इन चार के 20 भेद, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रऋषभनाराच संहनन, उपघात के बिना अगुरुलघु आदि छह, प्रशस्तविहायोगति और त्रस आदिक बारह – इस प्रकार 68 प्रकृतियाँ भेदविवक्षा से प्रशस्त (पुण्यरूप) कही हैं । और
- अभेद विवक्षा से 42 ही पुण्य प्रकृतियाँ हैं क्योंकि पहले कहे अनुसार 26 कम हो जाती हैं ॥ 41 ॥ 42 ॥

घादी णीचमसादं, णिरयाऊ णिरयतिरियदुग जादी ।
संठाणसंहदीणं, चदुपणपणगं च वण्णचओ ॥ 43 ॥
उवघादमसग्गमणं, थावरदसयं च अप्पसत्था हु ।
बंधुदयं पडि भेदे, अडणउदि सयं दुचदुरसीदिदरे ॥ 44 ॥ जुम्मं ।

- अर्थ—चारों घातिया कर्मों की प्रकृतियाँ,
- नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु,
- नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि 4 जाति, समचतुरस्र को छोड़कर 5 संस्थान, पहिले संहनन के सिवाय 5 संहनन, अशुभ वर्ण रस गंध स्पर्श ये चार अथवा इनके बीस भेद, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति और स्थावर आदिक दस – ये अप्रशस्त (पाप) प्रकृतियाँ हैं ।
- ये भेदविवक्षा से बन्धरूप 98 हैं और उदयरूप 100 हैं । तथा अभेदविवक्षा से बन्धयोग्य 82 और उदयरूप 84 प्रकृतियाँ हैं क्योंकि वर्णादिक चार के सोलह भेद कम हो जाते हैं ॥ 43-44 ॥

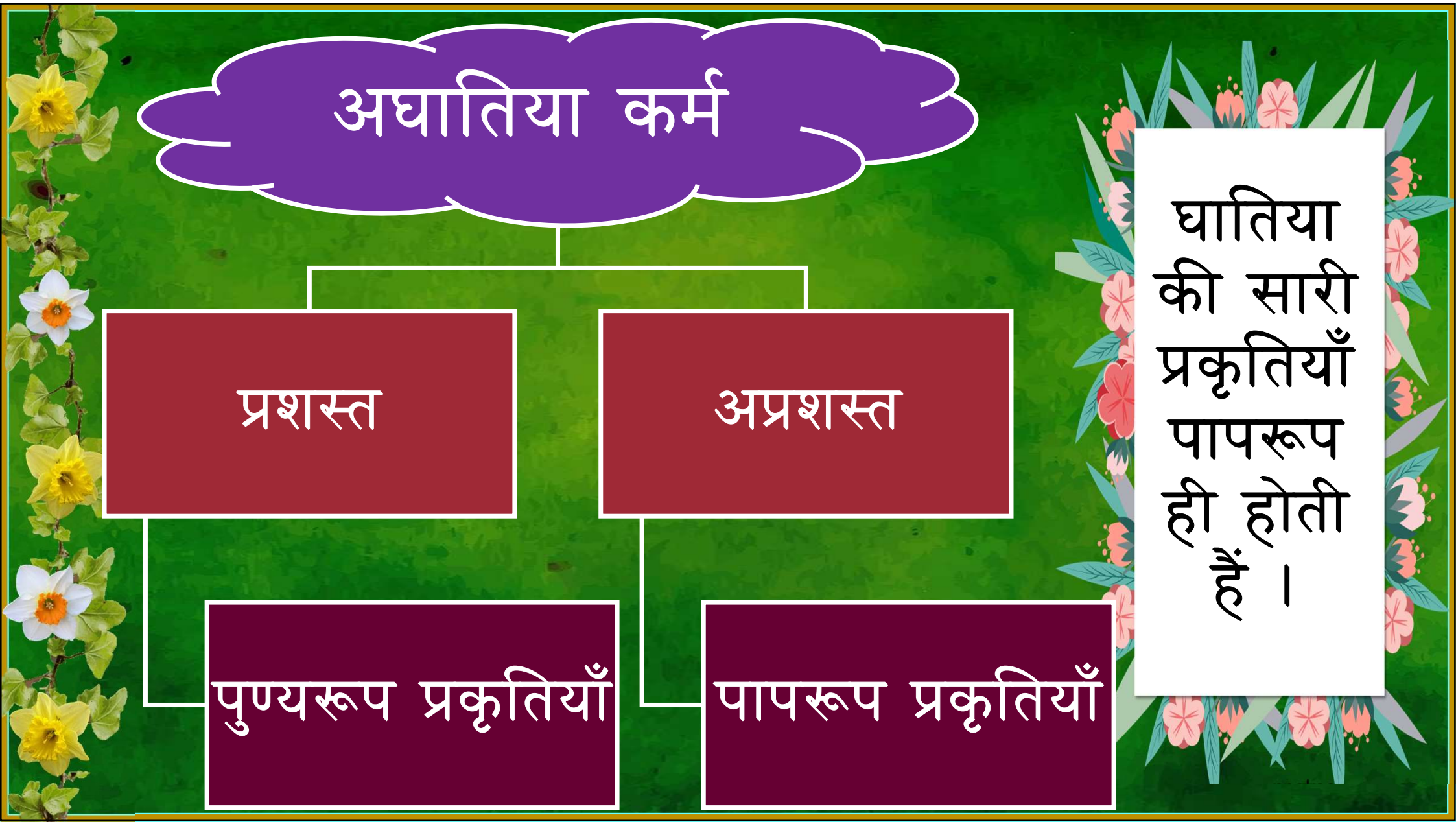

अघातिया कर्म
प्रशस्त
अप्रशस्त
पुण्यरूप प्रकृतियाँ
पापरूप प्रकृतियाँ
घातिया की सारी प्रकृतियाँ पापरूप ही होती हैं ।

| कर्म | प्रशस्त | अप्रशस्त |
|---|---|---|
| वेदनीय | साता | असाता |
| आयु | तिर्यंच, मनुष्य, देव | नरक |
| नाम | | |
| गति | मनुष्य, देव | नरक, तिर्यंच |
| जाति | पंचेन्द्रिय | एकेन्द्रिय — 4 |
| शरीर, बंधन, संघात | औदारिक — 5 | × |
| अंगोपांग | औदारिक — 3 | × |
| संस्थान | समचतुरस्र | न्यग्रोध परिमंडल — 5 |
| संहनन | वज्रऋषभनाराच | वज्रनाराच — 5 |
| आनुपूर्वी | मनुष्य, देव | तिर्यंच, नरक |
| वर्णादि | वर्ण — 4 | वर्ण — 4 |
| विहायोगति | प्रशस्त | अप्रशस्त |
| 8 स्वतंत्र प्रकृतिया | परघात — 7 | उपघात |
| 10 जोड़े वाली प्रकृतियाँ | त्रस आदि 10 | स्थावर आदि 10 |
| गोत्र | उच्च | नीच |
| कुल | 68 | 53 |

| प्रकृतियाँ | भेद विवक्षा | अभेद विवक्षा |
| --- | --- | --- |
| पुण्य प्रकृतियाँ | 68 | 42 |
| पाप प्रकृतियाँ | 47 + 53 = 100 | 47 + 37 = 84 |

| | भेद विवक्षा | | अभेद विवक्षा | |
|---|---|---|---|---|
| | बंध | उदय | बंध | उदय |
| पुण्य प्रकृतियाँ | 68 | 68 | 42 | 42 |
| पाप प्रकृतियाँ | 45 + 53 = 98 | 47 + 53 = 100 | 45 + 37 = 82 | 47 + 37 = 84 |

पाप प्रकृतियों में उदय प्रकृतियों से बंध प्रकृतियाँ 2 कम होती हैं क्योंकि सम्यक्त्व और मिश्र प्रकृति का बंध नहीं होता ।

पढमादिया कसाया, सम्मत्तं देससयलचारित्तं ।
जहखादं घादंति य, गुणणामा होंति सेसावि ॥ 45 ॥

- अर्थ—पहली अनन्तानुबन्धी आदिक अर्थात् अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन ये चार कषाय, क्रम से सम्यक्त्व को, देशचारित्र को, सकलचारित्र को और यथाख्यात चारित्र को घातती हैं अर्थात् सम्यक्त्व आदि को प्रकट नहीं होने देती । इसी कारण इनके नाम भी वैसे ही है जैसे कि इनमें गुण हैं । इनके सिवाय दूसरी जो प्रकृतियाँ हैं वे भी सार्थक नाम वाली ही हैं ॥ 45 ॥

अंतोमुहुत्त पक्खं, छम्मासं संखऽसंखणंतभवं ।
संजलणमादियाणं, वासणकालो दु णियमेण ॥ 46 ॥

- अर्थ—संज्वलन आदि अर्थात् संज्वलन, प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान, और अनन्तानुबंधी – इन चार कषायों की वासना का काल क्रम से अंतर्मुहूर्त, पक्ष (पंद्रह दिन), छः महीना और संख्यात, असंख्यात तथा अनंतभव हैं, ऐसा निश्चय कर समझना ॥ 46 ॥

# वासना काल

उदय का अभाव होने पर भी कषायों का संस्कार जितने काल रहता है, उसे वासना काल कहते हैं ।

| कषाय | वासना काल |
|---|---|
| अनंतानुबंधी | संख्यात, असंख्यात, अनंत भव |
| अप्रत्याख्यान | 6 मास |
| प्रत्याख्यान | 15 दिवस (1 पक्ष) |
| संज्वलन | अन्तर्मुहूर्त |

देहादी फासंता, पण्णासा णिमिणतावजुगलं च ।
थिरसुहपत्तेयदुगं, अगुरुतियं पोग्गलविवाई ॥ 47 ॥

- अर्थ — पाँच शरीरों से लेकर स्पर्शनाम तक 50, तथा निर्माण, आतप, उद्योत, तथा स्थिर, शुभ और प्रत्येक का जोड़ा अर्थात् स्थिर, अस्थिर आदि छः, तथा अगुरुलघु आदिक तीन – ये सब 62 प्रकृतियाँ पुद्गलविपाकी हैं ॥ 47 ॥

# पुद्गल-विपाकी प्रकृतियाँ

जिनका उदय पुद्गल में ही होता है,

वे पुद्गल-विपाकी प्रकृतियाँ हैं ।

जैसे शरीर नामकर्म के उदय से पुद्गल ही शरीररूप होता है ।

संक्षेप में
पुद्गल-विपाकी प्रकृतियाँ
देह प्रकृति से लगाकर स्पर्श तक
• 50 प्रकृतियाँ
निर्माण, आतप, उद्योत
• 3
अगुरुलघु, उपघात, परघात
• 3
स्थिर-अस्थिर
• 2
शुभ-अशुभ
• 2
प्रत्येक-साधारण
• 2
कुल
• 62

# देहादि से फासंता = 50

8 स्वतंत्र प्रकृतियों में से उच्छ्वास, तीर्थंकर को छोड़कर शेष 6

10 जोड़ों में से 3 जोड़े = 6

| | |
|---|---|
| शरीर | • 5 |
| बंधन | • 5 |
| संघात | • 5 |
| संस्थान | • 6 |
| अंगोपांग | • 3 |
| संहनन | • 6 |
| वर्ण | • 5 |
| गंध | • 2 |
| रस | • 5 |
| स्पर्श | • 8 |
| कुल | 50 |

आऊणि भवविवाई, खेत्तविवाई य आणुपुव्वीओ ।
अट्ठुत्तरि अवसेसा, जीवविवाई मुणेयव्वा ॥ 48 ॥

- अर्थ—नरकादिक चार आयु भवविपाकी हैं क्योंकि नारकादि पर्यायों के होने में ही इन प्रकृतियों का फल होता है ।
- चार आनुपूर्वी प्रकृतियाँ क्षेत्रविपाकी हैं क्योंकि परलोक को गमन करते हुए जीव के मार्ग में ही इनका उदय होता है ।
- बाकी जो अठत्तर प्रकृतियाँ हैं वे सब जीवविपाकी जानना क्योंकि नारक आदि जीव की पर्यायों में ही इनका फल होता है ॥ 48 ॥

# भव-विपाकी

जिनका विशिष्ट भव में ही उदय होता है, वे भव-विपाकी प्रकृतियाँ हैं ।

चार आयु कर्म भव-विपाकी हैं ।

अन्य कर्म तो संक्रमित होकर अन्य रूप भी उदय में आते हैं, पर आयु तो उसी भव में ही नियम से उदय में आती है, अन्यत्र नहीं । इसलिए आयु ही भवविपाकी है ।

# क्षेत्र-विपाकी

परलोक के लिए गमन करते हुए क्षेत्र में ही जिसका उदय होता है, वह क्षेत्र-विपाकी कर्म है ।

4 आनुपूर्वी क्षेत्र-विपाकी प्रकृतियाँ हैं ।

शेष प्रकृतियाँ 148 – 62 – 4 – 4 = 78 जीवविपाकी हैं ।

वेदणियगोदघादी-णेकावण्णं तु णामपयडीणं ।
सत्तावीसं चेदे, अट्ठत्तरि जीव विवाईओ ॥ 49 ॥

- अर्थ—वेदनीय की 2,
- गोत्र की 2,
- घातियाकर्मों की 47 – इस प्रकार 51 और
- नामकर्म की 27
- इस तरह 51+27=78 प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं ॥ 49 ॥

# जीवविपाकी

जो प्रकृतियाँ
जीव की नरकादि पर्याय को
उत्पन्न करने का कारण हैं,
वे जीवविपाकी प्रकृतियाँ हैं ।

# जीवविपाकी कर्म

| घातिया | वेदनीय | गोत्र | नाम |
| --- | --- | --- | --- |
| 47 | 2 | 2 | 27 |

कुल 78

तित्थयरं उस्सासं, बादरपज्जत्तसुस्सरादेज्जं ।
जसतसविहायसुभगदु, चउगइ पणजाइ सगवीसं ॥50॥

- अर्थ—तीर्थंकर और उच्छ्वास प्रकृति तथा
- बादर-पर्याप्त-सुस्वर-आदेय-यशस्कीर्ति-त्रस-विहायोगति और सुभग इनका जोड़ा, अर्थात् बादर-सूक्ष्म आदिक 16 और
- नरकादि चार गति तथा एकेन्द्रियादि पाँच जाति
- इस प्रकार सत्ताईस नामकर्म की प्रकृतियाँ जीवविपाकी जानना ॥ 50 ॥

गदि जादी उस्सासं, विहायगदि तसतियाण जुगलं च ।
सुभगादिचउज्जुगलं, तित्थयरं चेदि सगवीसं ॥ 51 ॥

- अर्थ—चार गति, पाँच जाति, उच्छ्वास, विहायोगति, त्रस-बादर-पर्याप्त इन तीन का जोड़ा (त्रस, स्थावर आदि) एवं सुभग-सुस्वर-आदेय-यशस्कीर्ति इन चार का जोड़ा (सुभग, दुर्भग आदि) और एक तीर्थंकर प्रकृति – इस प्रकार क्रम से सत्ताईस की गिनती कही है ॥ 51 ॥

# नामकर्म की 27 जीवविपाकी प्रकृतियाँ

| गति | जाति | उच्छ्वास | विहायोगति | 7 जोड़े | तीर्थंकर | कुल |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 4 | 5 | 1 | 2 | 14 | 1 | 27 |

7 जोड़े
त्रस - स्थावर
बादर - सूक्ष्म
पर्याप्त - अपर्याप्त
सुभग - दुर्भग
सुस्वर - दुस्वर
आदेय - अनादेय
यशः - अयश

तीर्थंकर-रूप अवस्था किसकी है ?

जीव की या बाहरी वस्तुओं की ?

वह जीव की ही अवस्था कही जायेगी, बाह्य पदार्थों की नहीं ।